बिहार की ऐतिहासिक जीत के मायने

संजय कुमार

यह कहना गलत होगा कि ऐसी जीत सिर्फ विकास के दम पर मिली है और जाति का मुद्दा खत्म हो गया है. इस बार के नतीजे की तुलना कुछ मामलों में 1995 के विधानसभा चुनाव के नतीजे से की जा सकती है. इस बार के चुनाव में महिलाओं की ऐतिहासिक भागीदारी का लाभ भी सत्ताधारी गठबंधन को मिला.

सत्ताधारी जद (यू)-भाजपा गठबंधन ने बिहार विधानसभा चुनाव में दो तिहाई से अधिक बहुमत हासिल कर इतिहास रच डाला है. जद (यू)-भाजपा ने 206 सीटें हासिल कीं, जो पिछले चुनाव से भी 63 ज्यादा है. जबकि उसका निकटतम प्रतिद्वंद्वी राजद-लोजपा गठबंधन अपने आंकड़े को 25 तक ही पहुंचा पाया जो 2005 के चुनाव से 29 कम है. कांग्रेस तो 9 से घट कर चार सीटों तक ही सिमट गयी. सीपीआइ एक मात्र सीट के साथ केवल खाता खोलने में सफल रही. झारखंड मोर्चा के खाते में एक, जबकि अन्य के खाते में भी मात्र छह सीटें गयीं. पिछले कुछ दशकों के विधानसभा चुनावों में किसी पार्टी या गठबंधन की ऐसी बड़ी जीत नहीं हुई थी.

बिहार में केवल पहले दो विधानसभा चुनाव (1952 और 1957) ऐसे रहे, जिसमें कांग्रेस 200 का आंकड़ा पार करने में सफल रही थी. तब विधानसभा में सीटों की संख्या 324 थी. तब कांग्रेस के खाते में 40 फीसदी से अधिक मत पड़े थे. इस चुनाव में सत्ताधारी गठबंधन के पक्ष में करीब 39.5 फीसदी मत पड़े और उसने अपने निकटतम प्रतिद्वंद्वी राजद गठबंधन को 14 फीसदी मतों से पीछे छोड़ दिया, जिसे सिर्फ 25.5 फीसदी मत मिले. यदि हम राजद गठबंधन की सबसे बड़ी जीत को याद करें तो 1995 के विधानसभा चुनाव में उसे करीब 35.5 फीसदी मत मिले थे. तब राजद का नाम जनता दल था. जद (यू)- भाजपा गठबंधन को जब पिछली बार सत्ता मिली थी तब उसके खाते में 36.2 फीसदी वोट पड़े थे.

वामपंथी पार्टियों का बिहार के कई इलाकों में जनाधार रहा है. पिछले चुनावों में रुझान चाहे राजद गठबंधन के पक्ष में रहा हो या जद (यू)-भाजपा, कुछ सीटों पर जीत के साथ वामपंथी पार्टियां अपनी उपस्थिति दर्ज करती रही थीं. इस बार वामपंथी पार्टियों का भी लगभग सफाया हो गया. प्रमुख वामपंथी पार्टियों सीपीआइ, सीपीएम और सीपीआइ (एमएल) के बीच गठबंधन के बावजूद केवल सीपीआइ एक सीट जीत सकी. ऐसे में बसपा के उभरने की तो उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी, क्योंकि राज्य के किसी इलाके में पार्टी की दमदार उपस्थिति नहीं है.

इस बार का नतीजा भले ही पिछले चुनावों से काफी अलग है, लेकिन कुछ मामलों में इसकी तुलना 1995 के विधानसभा चुनाव के नतीजे से की जा सकती है. 1995 के चुनाव ने बिहार की राजनीति का सामाजिक एजेंडा बदल दिया था. तब पहली बार राज्य की सत्ता की चाभी अगड़ी कही जाने वाली जातियों के हाथ से फिसल कर पिछड़ी जाति के नेता के हाथ में आयी. इस बार के विधानसभा चुनाव ने भी राजनीति के एजेंडे को बदला है. इसने सामाजिक और राजनीतिक गठबंधनों को नया एजेंडा दिया है विकास का. संदेश साफ है, वोटर उस सरकार को दोबारा मौका देंगे, जो विकास करेगी. लालू-राबड़ी के 15 वर्षों के शासनकाल में राजद सुप्रीमो लालू प्रसाद वोट बैंक के गणित में ही उलझे रहे. उनका एम-वाई (मुसलिम-यादव) का नारा इतना सफल हुआ कि उन्हें राज्य के विकास की कभी जरूरत ही महसूस नहीं हुई.

नीतीश सरकार के पिछले कामों से जाति या समुदाय की सीमा से परे राज्य की आम जनता को फायदा हुआ. नीतीश की इस जीत में जहां उनके कामों के प्रति जनता की खुशी का इजहार है, वहीं यह संकेत भी कि लोगों को उनकी सरकार से काफी अधिक उम्मीदें हैं. अब सरकार के सामने असली चुनौती जन उम्मीदों पर खरा उतरने की होगी.

भारी बहुमत से दोबारा चुने जाने पर नीतीश ने कहा भी इस नतीजे ने साबित किया है कि चुनावी जीत केवल सामाजिक जोड़-तोड़ से ही नहीं, विकास के दम पर भी हो सकती है. पिछले पांच वर्षों के कार्यकाल में उन्होंने पूरे राज्य में सड़कों के निर्माण और जीर्णोद्धार पर ध्यान दिया. कानून-व्यवस्था की स्थिति में सुधार के पीछे कहीं से भी उनका मकसद किसी एक जाति या समुदाय को लाभ पहुंचाना नहीं था. उनके इन कामों से जाति या समुदाय की सीमा से परे राज्य की आम जनता को फायदा हुआ. मतदान बाद सर्वेक्षण के नतीजे साफ बता रहे थे कि राज्य की आम जनता का बहुत बड़ा वर्ग उनके इन दोनों कामों से खुश था. जनता की यह खुशी मतदान में भी झलकी. विकास कार्यों के दम पर नीतीश कमोबेश सभी प्रमुख जातियों के मत पाने में सफल रहे. स्कूली छात्राओं को साइकिल देने और पंचायतों में महिलाओं को 50 फीसदी आरक्षण जैसे कदमों ने भी उन्हें जाति और समुदाय की सीमा से परे सभी वर्गों खासकर महिलाओं में लोकप्रिय बनाया. आंकड़े बताते हैं कि इस चुनाव में महिलाओं की भागीदारी ऐतिहासिक रही है. राज्य में 54 फीसदी महिला मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया, जबकि पुरुष मतदाताओं में मतदान करने वालों का प्रतिशत सिर्फ 50 था. यह बिहार का पहला चुनाव था, जिसमें मतदान करने वाली महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों से अधिक रहा. नतीजे गवाह हैं कि महिलाओं की इस ऐतिहासिक भागीदारी का लाभ भी सत्ताधारी गठबंधन को मिला.

यह सही है कि इस चुनाव में विकास का मुद्दा कारगर रहा, लेकिन यह कहना गलत होगा कि ऐसी जीत सिर्फ विकास के दम पर मिली है और बिहार की राजनीति से जाति का मुद्दा खत्म हो गया है. अपने विकास कार्यों के दम पर नीतीश 2009 के लोकसभा चुनाव में अति पिछड़ी जातियों का मत पाने में सफल रहे थे. पर केवल अगड़ी, कुर्मी, कोयरी और अति पिछड़ी जातियों के मतों से ही वे ऐसी बड़ी जीत हासिल नहीं कर सकते थे. विकास के दम पर भी वे अपनी दोबारा जीत पक्की मानकर नहीं चल सकते थे. इसलिए नीतीश ने राजद-लोजपा के पारंपरिक वोट बैंक में भी सेंध लगाने की कोशिश की. दलित जहां लोजपा प्रमुख राम विलास पासवान के पारंपरिक वोट बैंक माने जाते थे, वहीं मुसलिम मतों को राजद के वोट बैंक के रूप में देखा जाता था. नीतीश ने अति पिछड़े दलितों को महादलित का नाम दिया और उनके कल्याण की कई योजनाएं शुरू कीं. इससे दुसाध जाति, जिससे राम विलास पासवान भी आते हैं, को छोड़कर सभी पिछड़ी जातियों का मत पाने में सफल रहे. इसी तरह मुसलमानों की पिछड़ी जातियों के लिए भी उन्होंने कई योजनाओं की घोषणा की और उन्हें 'पसमांदा मुसलमान' का नाम दिया. उनके इन दोनों कदमों का अच्छा-खासा असर हुआ. इससे जहां वे पिछड़ी जातियों के लोगों को लाभ पहुंचाने में सफल रहे, वहीं अपने विरोधियों के इस वोट बैंक में सेंध लगाने में भी कामयाब हुए.

सीएसडीएस, दिल्ली के सर्वेक्षणों के नतीजे बताते हैं कि दुसाध जाति के मतदाताओं का रुझान भले ही राजद-लोजपा गठबंधन के पक्ष में रहा हो, दूसरी सभी दलित जातियों का झुकाव सत्ताधारी गठबंधन की ओर रहा. इसी तरह मुसलिम वोट का भी जद (यू)-भाजपा, राजद-लोजपा और कांग्रेस के बीच विभाजन हुआ. राजद उन्हीं इलाकों में मुसलिम मत पाने में सफल रहा, जहां उसके खिलाफ भाजपा के उम्मीदवार थे. जिन इलाकों में उसका मुकाबला जद (यू) से था, वहां राजद मुसलिम वोट बैंक बचाने में सफल नहीं रह सका. लालू अपने सहयोगी लोजपा को मुसलिम मत दिला पाने में सफल नहीं रहे. जिन इलाकों में मुसलिम मतदाताओं को भाजपा या लोजपा में से किसी एक को चुनने का विकल्प था, वहां उन्होंने कांग्रेस या निर्दलीय उम्मीदवार का साथ दिया. कुल मिलाकर राजद गठबंधन को सबसे ज्यादा नुकसान मुसलिम मतों के खिसकने से ही हुआ और इसने नीतीश को बड़ी जीत दिलाने में खास भूमिका निभायी.

नीतीश की इस जीत में जहां उनके कामों के प्रति जनता की खुशी का इजहार है, वहीं यह संकेत भी कि लोगों को उनकी सरकार से काफी अधिक उम्मीदें हैं. अब नयी सरकार के सामने असली चुनौती जन उम्मीदों पर खरा उतरने की होगी.

(लेखक सीएसडीएस में फेलो और राजनीतिक विश्लेषक हैं)

संपादकीय

खजाने के मालिकों का खेल

आम आदमी अपनी गाढ़ी कमायी से जो कुछ भी बचा पाता है, उसे रखने की सबसे महफूज जगह बैंक ही दिखायी पड़ती है. लेकिन क्या बैंक अब वाकई महफूज रह गये हैं? कल सीबीआई द्वारा कई सरकारी व निजी बैंकों के प्रबंधन के बड़े अधिकारियों की गिरफ्तारी के बाद आम आदमी के मन में यही सवाल उठ रहा है. बैंकों और रीयल स्टेट बिल्डरों के बीच काम करने वाली 'मनी मैटर्स' जैसी बिचौलिया संस्था ने सरकारी और गैरसरकारी बैंकों के बड़े अधिकारियों को घूस दी. यह घूस बिल्डरों को आसान शर्तों पर बैंकों से कर्ज देने के एवज में दी गयी. गरीबों को लोन देने के एवज में बैंक कर्मचारियों के कमीशन खाने की बात नयी नहीं है, लेकिन नया है ऊंचे ओहदों पर बैठे अधिकारियों का भी उसी तरह की कमीशनखोरी में शामिल होना. क्या हमने ऐसा ही समाज रच डाला है, जिसमें ऊपर से नीचे तक सिर्फ और सिर्फ भ्रष्टाचार व घोटाला है? कहीं हम ऐसे भ्रष्ट बैंकरों को अपनी गाढ़ी कमायी हिफाजत के लिये सौंप कर बिल्ली को दूध की रखवाली का जिम्मा तो नहीं दे रहे? ऐसे ही परेशान करने वाले सवालों के बीच हम उस समय खड़े हैं, जब राजनीति में सर्वोच्च पदों पर विराजमान लोग भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, पत्रकार कारपोरेट बिचौलियों में बदल गये हैं, भ्रष्टाचार के खिलाफ बनी संस्था का मुखिया भ्रष्टाचार का आरोपी है और न्याय का जिम्मा संभाले लोगों के दामन भी आरोपों के छींटों से दागदार हैं. कुल मिलाकर लोकतंत्र के चारों खंभों में भ्रष्टाचार का घुन लग चुका है. इसका असर अब उन संस्थाओं तक में दिख रहा है जिन्होंने वर्षों से करोड़ों लोगों का भरोसा हासिल किया था. जीवन बीमा निगम के अधिकारियों के इस घोटाले में शामिल होने से आम लोगों के विश्वास को सबसे ज्यादा झटका लगा है. फिलहाल, इन बैंकों में लोगों के निवेश पर कोई संकट नहीं मंडरा रहा, लेकिन बैंकों की साख को जबर्दस्त धक्का लगा है. रीयल स्टेट के पूरे कारोबार के बारे में जितना कानून का पालन होता है, उससे अधिक कानून का उल्लंघन होता है. बिल्डरों को कई तरह के लोन मिलते हैं, लेकिन बैंक जमीन खरीदने के लिये लोन नहीं दे सकते. ऐसे में निर्माण या अन्य नामों से लिये जाने वाले लोन का इस्तेमाल जमीन खरीदने में किया जाता है. जाहिर है, इस पूरी प्रक्रिया में कानूनों का उल्लंघन होता है. बैंकों के बड़े अधिकारी इन उल्लंघनों को नजरअंदाज करने के एवज में भारी कमायी करते हैं. लोन दिलवाने और घूस देने की इसी पूरी प्रक्रिया को सफाई से निपटाने के लिये मनी मैटर्स जैसी संस्थाओं की भूमिका होती है. इन गिरफ्तारी से अभी इस मामले का पर्दाफाश तो हुआ है, लेकिन क्या ऐसी कार्रवाइयों से कमीशन की पूरी व्यवस्था पर कारगर रूप से लगाम लग सकती है? फिर इस बात का भी भरोसा कैसे किया जाये कि, इन मामलों की जांच में शामिल अधिकारियों को खरीदा नहीं जा सकता? आखिर खजानों के मालिकों के खेल में खरीद-फरोख्त की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता.

बिहार से सबक ले झारखंड

बिहार में नीतीश कुमार तीन-चौथाई बहुमत से सत्ता में लौटे हैं. काम के बल पर. विकास को मुद्दा बनाकर. जिन विधायकों ने काम नहीं किया था, उनका टिकट काट दिया गया था. जो दो-चार किसी कारण से काम नहीं करने के बावजूद टिकट पा गये थे, उन्हें जनता ने रास्ता दिखा दिया. यह सीधा संकेत है कि जनता हिसाब चाहती है. काम नहीं करनेवाले या भ्रष्ट नेताओं के लिए कोई जगह नहीं है. जाति से ऊपर उठकर इस चुनाव में लोगों ने बिहार में वोट किया. बिहार झारखंड का पड़ोसी राज्य है. 10 साल पहले तक तो यह बिहार का ही हिस्सा था, इसलिए बिहार और झारखंड का अटूट संबंध है. 10 साल पहले जब बिहार टूटा था तो लगा था कि वह बरबाद हो जायेगा, सारे संसाधन झारखंड में थे, लेकिन बिहार ने अपने आपको संभाल लिया. अब तो बिहार अपना रास्ता बना चुका है. वह बदल रहा है. वहां के लोग और वहां के राजनेताओं के सोच बदल गये हैं. जिस झारखंड से बहुत उम्मीद थी, वह ही गड़बड़ा गया. चीनी (संसाधन) थी, चींटी उसे चाट गयी. यहां के राजनेता-अफसर झारखंड को विकसित करने में असफल रहे. जब तक बिहार नहीं सुधरा था, झारखंड भी यह सोचकर संतोष करता था कि पड़ोसी राज्य की स्थिति यहां से खराब है. अब पड़ोसी बेहतर हो गये हैं. ऐसी स्थिति में झारखंड का चिंतित होना स्वाभाविक है. इसलिए क्योंकि अब बारी झारखंड की जनता की है. अब तक झारखंड आदिवासी-गैर आदिवासी के मामले में ही उलझता रहा है. किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता है. किसी तरह जोड़-तोड़ कर सरकार बनती रही है. लूट की छूट मिलती रही है. काम करने में किसी का मन नहीं लगता. राजनेता खुद कमाने में लगे रहते हैं, कोई बोलनेवाला नहीं होता. अब यहां के राजनेताओं को डर सता रहा है कि जनता यहां भी बिहार की तरह जाग रही है. हिसाब मांगेगी और काम नहीं करनेवालों को नहीं छोड़ेगी. 10 साल में झारखंड में योजना तो खूब बनी पर काम नहीं दिख रहे. अब अर्जुन मुंडा के हाथ में कमान है. तेजी से काम करना होगा. उनकी टीम काम करेगी तो अगले चुनाव में इसका फल भी मिलेगा. झारखंड विकास में पहले से पिछड़ चुका है. योजनाएं लंबित हैं. पूरी नहीं होती. अब इन कामों को समय सीमा में पूरा करना होगा. खेतों में पानी नहीं पहुंच पाता. रोजगार के अवसर बन नहीं पा रहे हैं. हर साल दावे किये जाते हैं कि एक लाख लोगों की बहाली होने वाली है, बहाली होती नहीं है. अगर कुछ की हुई भी, तो जेपीएससी वाली कहानी ही दोहरायी जाती है. ट्रैफिक की समस्या बनी हुई है, फ्लाइओवर तक नहीं बन रहे. अब तेजी से निर्णय लेने और लागू करने की झारखंड में जरूरत है. बिहार के चुनाव परिणाम से झारखंड सबक ले और बिहार की तरह ही विकास के रास्ते पर चले, यही झारखंड के हित में होगा.

सूचना

प्रभात खबर के पाठक अपने पत्र इ-मेल के जरिये और अपनी राय एसएमएस से भी भेज सकते हैं. एसएमएस भेजने के लिए **CA** स्पेस के बाद अपना मैसेज 5676774 पर भेजें. इ-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हों, लिपि रोमन भी हो सकती है. इ-मेल का पता है- *eletter@prabhatkhabar.in*

प्रभात खबर दस्तावेज

बेरमो में आर्थिक नाकाबंदी

बेरमो : आर्थिक नाकेबंदी की घोषणा ने झामुमो के आला नेताओं में टकराव की स्थिति पैदा कर दी है. सांसद विनोद बिहारी महतो एवं शिबू मंडल गुटें की आंतरिक राजनीति एक दूसरे के विरुद्ध उभरने लगी है. झारखंड कोलियरी मजदूर यूनियन के आह्वान पर बेरमो की आर्थिक नाकेबंदी के लिए जहां शिबू सोरेन समर्थक कमर कस चुके हैं, वहीं विनोद बिहारी महतो के समर्थकों ने अघोषित रूप से इससे अपने आप को अलग कर रखा है. जबकि पिछले माह में ही सांसद विनोद बिहारी महतो के नेतृत्व में कल्याणी में दो दिवसीय कैंप लगा कर खेरी प्रक्षेत्र का चक्का जाम किया गया था. इसी को मुद्दा बना कर शिबू सोरेन के समर्थकों ने नाकेबंदी की घोषणा की है. झामुमो में नेतृत्व के संघर्ष का एक दूसरा कारण भावी राजनीति को लेकर है. झारखंड कोलियरी मजदूर यूनियन के जरिये शिबू मंडल खेमा कोयलांचल मजदूर यूनियन की राजनीति में अपनी पैठ बनाने के लिए व्यग्र है. जबकि सांसद विपिन बिहारी महतो अभी भी कोयलांचल के कामगार मजदूर यूनियन के तहत अपनी गतिविधियां संचालित करना चाहते हैं. अभी तक सांसद श्री महतो की पूर्व सांसद एके राय के प्रति अंधविश्वास भी झामुमो में गतिरोध को पैदा कर रही है.

(26 नवंबर 1991, को प्रकाशित)

आपने फरमाया

देश (पाकिस्तान) अपने सबसे मुश्किल हालात से गुजर रहा है और मेरी पार्टी देश को मौजूदा संकट से बाहर निकालेगी. मुझे कोई रोक नहीं सकता, मैं देश वापस लौटूंगा और चुनाव में हिस्सा लूंगा. यदि लोग मुझे अपना मत देंगे तो मैं देश में बदलाव लाऊंगा.

– ***परवेज मुशर्रफ**, पाकिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति*

छोटी गलती से बिहार को बड़ा घाटा

सुरेंद्र किशोर

गांधी जी के निर्देश के बावजूद केबी सहाय को मंत्री पद से नहीं हटाया गया था. इसके विपरीत जगलाल चौधरी को 1952 में दुबारा मंत्री इसलिए नहीं बनाया गया क्योंकि वे शुद्ध गांधीवादी थे और शराबबंदी लागू करने की कोशिश कर रहे थे. इन दो छोटी -छोटी गलतियों का बिहार को और यहां तक कि कांग्रेस को भी आगे चलकर भारी नुकसान पहुंचा. आजादी के बाद ही इससे गलत परंपरा पड़ गयी. भ्रष्टाचारियों को लगा कि उन्हें इनाम मिल सकता है और ईमानदार लोगों को लगा कि उन्हें सजा मिल सकती है. याद रहे कि 1946 में बनी अंतरिम सरकार में ये दोनों मंत्री थे. सहाय राजस्व मंत्री और जगलाल चौधरी आबकारी मंत्री थे. भ्रष्टाचार के आरोप की शिकायतें पहुंचने पर महात्मा गांधी ने कहा था कि केबी सहाय को मंत्रिमंडल से हटा दिया जाना चाहिये. संभवत: डा.राजेंद्र प्रसाद भी इसी राय के थे. यह भी कहा जाता है कि राजेन बाबू के कहने पर ही गांधी जी ने केबी सहाय को हटाने का निर्देश दिया था. पर आजादी के बाद गांधी जी की बातें सुननी कांग्रेसियों ने लगभग बंद कर दी थी. ठीक उसी तरह 1977 में सरकार बन जाने के बाद जय प्रकाश नारायण की बातें आम तौर पर अनसुनी कर दी जाती थी. गांधी जी की इच्छा को ठुकराते हुए तत्कालीन मुख्यमंत्री डा. श्रीकृष्ण सिन्हा ने कह दिया था कि वे खुद मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे देंगे, पर केबी सहाय को नहीं हटाएंगे.

उधर जगलाल चौधरी ने आबकारी मंत्री के रूप में नशाबंदी अभियान शुरू किया तो इसे कांग्रेस के अनेक प्रादेशिक व राष्ट्रीय नेताओं ने पसंद नहीं किया. उन्हें 1952 के मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया गया. ऐसा इस बात के बावजूद हुआ कि शराबबंदी कांग्रेस की मूल नीतियों में से एक थी.

यह संयोग नहीं था कि जब 1967 में पहली बार बिहार की सत्ता से जनता ने कांग्रेस को हटाया तो केबी सहाय ही मुख्यमंत्री थे. सहाय के कार्यकाल के अंतिम दिनों में उनके भ्रष्टाचार को लेकर गली-गली में उनके खिलाफ नारा लगता था. बाद में जब अय्यर आयोग बना तो उसने भी अन्य पांच नेताओं के साथ सहाय को भी भ्रष्ट आचरण का दोषी ठहराया था.

किसी भी अच्छी पार्टी, मुख्यमंत्री या फिर प्रधान मंत्री के लिए राज्यहित व देश हित में यह बात जरूरी होनी चाहिए कि वह ईमानदार व जनसेवी लोगों को मंत्री बनाये तथा सरकार के महत्वपूर्ण पदों पर रखे और बेईमानों को खुद से दूर रखे. इस गरीब देश और प्रदेश के लिए यह और भी जरूरी है ताकि सरकारी साधनों को लूटने का प्रोत्साहन किसी को नहीं मिले. जिस राज्य में भ्रष्टाचार के आरोपों से सने नेता ऊंचे पद पाते हों और ख्यात ईमानदार लोग किनारे कर

भूले-बिसरे

दिये जाते हों, उस राज्य व देश में वही होगा जैसा बाद के वर्षों में हुआ. इस देश में आज राष्ट्रीय पैमाने पर घोटालों की धूम मची है और बिहार में भ्रष्टाचार से लड़ने की कोशिश कर रही सरकार को भी नाकों चने चबाने पड़ रहे हैं. सरकार में भ्रष्टाचार की आदत ऐसी लग चुकी है कि वह छूटती ही नहीं.

दिवंगत जगलाल चौधरी का नाम ईमानदार व गांधीवादी नेता में रूप में लिया जाता है. पर उन्हें सरकार में रख कर गांधी की जनहितकारी नीतियों को लागू नहीं करने दिया गया. जगलाल चौधरी अनुसूचित जाति की उस उप जाति से आते थे जो परंपरागत रूप से नशा के व्यापार में रही है. नशाबंदी से चौधरी जी की जाति के अनेक लोग भी नाराज थे. फिर भी उन्होंने 1938 में बिहार मद्य निषेध विधेयक पारित कराया. गांधी जी के आह्वान पर जगलाल चौधरी मेडिकल की पढ़ाई बीच में छोड़कर स्वतंत्रता सेनानी बने थे. 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गढ़खा में गोरों ने चौधरी के पुत्र को गोली मार दी थी. यानी इस देश को स्वतंत्र बनाने में उनका कम योगदान नहीं था. पर जब 1952 में बिहार में मंत्रिमंडल बना तो उसमें कुल 12 सदस्य थे जिनमें नौ सवर्ण थे. तर्क दिया जाता था कि पिछड़ों व दलितों में योग्य लोग मौजूद नहीं थे. चौधरी इस तर्क को काटते थे. पर तत्कालीन हुक्मरानों ने जो गलतियां कीं, उनका खामियाजा आज भी देश-प्रदेश भुगत रहा है. यदि किसी समुदाय के योग्य व्यक्ति को आगे नहीं लाओगे तो उस समुदाय में प्रतिक्रिया होगी और एक दिन उस समुदाय के अयोग्य व भ्रष्ट लोग ही नेता बन जाएंगे.

जगलाल चौधरी को यदि नशाबंदी के पक्ष में अभियान जारी रखने दिया गया होता तो आज यह नहीं कहा जाता कि गांव-गांव में शराब की दुकानें खुल गई हैं. केबी सहाय जैसे विवादास्पद व्यक्ति को निरुत्साहित किया गया होता तो आज सरकारी भ्रष्टाचार ने इतना वीभत्स रूप नहीं लिया होता. वैसे केबी सहाय और जगलाल चौधरी के नाम सुविधा के लिए नमूना के तौर पर यहां लिये जा रहे हैं. आजादी के तत्काल बाद के जमाने में ऐसे और भी कई नेता उपलब्ध थे. दोनों तरह के. आज भी हैं. पर आज ईमानदार कम हैं, बेईमान ही अधिक हैं.

जगलाल चौधरी का कसूर इतना ही था कि वे चाहते थे कि गांधीवादी नीतियां लागू हों. देश में स्वदेशी चले. लोगों को कानून का पालन करने के लिए बाध्य किया जाए. सरकार ईमानदारी से काम करे. पुत्री कमला की शादी में उन्होंने 50 लोगों के लिए ही भोजन बनवाया था. कुछ अधिक लोग पहुंच गये तो उन्होंने खाना नहीं खाया. इस तरह वे गेस्ट कंट्रोल एक्ट को तोड़ने के गुनहगार नहीं बने. वे इस कानून को अव्यावहारिक मानते थे, पर कहते थे कि जब तक कानून है, तब तक इसका पालन होना ही चाहिए. कुछ लोग चौधरी के इस कथन को अव्यावहारिक मानेंगे, पर गांधी जी के जीवन में ऐसे अनेक प्रकरण हैं जो अव्यावहारिक लगते हैं. पर इसी कारण मोहनदास करमचंद गांधी महात्मा गांधी थे और जगलाल चौधरी शुद्ध गांधीवादी.

जमीनी हकीकत

3 जी सेवा ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए भले ही मोबाइल कंपनियों में रार मची हो, पर नील्सन द्वारा शहरी क्षेत्रों में किये सर्वे के अनुसार पांच में से एक ग्राहक ही इस तीसरी पीढ़ी की सेवा की ओर रुख करेगा. तेज इंटरनेट सेवा तथा अन्य खूबियों के बावजूद देश के आम मोबाइल ग्राहक तक पहुंचने में इसे अभी दस साल लगेंगे.

सनद रहे

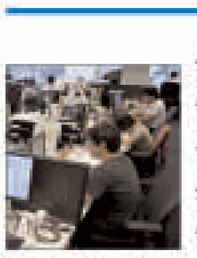

दुनिया के 21 देशों में किए गये एक सर्वेक्षण के अनुसार सबसे ज्यादा भारत में कर्मचारी अपने अधिकारियों यानी बॉस को अच्छा मानते हैं जबकि सबसे ज्यादा जापान के कर्मचारियों ने अपने बॉस को बुरा बताया है.

अनुच्छेद-19

इतिहास से सबक

इतिहास से हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है. वस्तुत: यह हम सबों का मार्गदर्शन एक शिक्षक की भांति करता है. लेकिन आम तौर पर हम इतिहास से सबक नहीं लेते. यह तो इतिहास ही है जो खुद अपने आप को दुहराता है. बिहार जो कभी लोकतंत्र की प्रयोगशाला रहा था, जहां शिक्षा की अलख पूरी दुनिया में रोशन हो रही थी. जिस प्रदेश से पूरे भारतवर्ष की ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया की उम्मीदें थी. जो ज्ञान- विज्ञान का सर्वाधिक प्रमुख केंद्र रहा था. बिहार ने सभी मोर्चे पर नेतृत्व संभाला है. प्रथम पूर्ण भारतीय साम्राज्य (मौर्य और गुप्त) यहीं पर अस्तित्व में आया था. प्रथम विश्वविद्यालय नालंदा की स्थापना भी यहीं पर हुई थी. हमने इसके गौरव को खो दिया था. वो प्रदेश आजादी के बाद संभलने के बजाय पिछड़ते चला गया. लेकिन अब उसे वापस पाने की तैयारी हो रही है. इसी राज्य से गांधीजी ने अपने अहिंसात्मक आंदोलन की शुरुआत की थी, जिसमें राज्य के लोग दृढ़ता से गांधीजी के साथ खड़े रहे. यह जयप्रकाश नारायण ही थे जिन्होंने देश में लोकतंत्र की रक्षा के लिए आंदोलन चलाया. लोकतंत्र का मतलब है वोट देने का अधिकार, बिना किसी भय और व्यवधान के. दुर्भाग्य से स्वतंत्रता बाद लोकतंत्र ने दूसरी ही राह पकड़ ली है. लोग जाति, पैसे और न जाने किस- किस चीज के लिए वोट करते हैं. यह पूरी देश में एक जैसी स्थिति है. यहां मेरा विचार है कि लोगों के सामने एक बेहतर अवसर है रास्ता दिखाने का. लोगों को विकास के लिए वोट करना चाहिए और विकास न होने की स्थिति में भी वोट करना चाहिए.

तपन लाल, बूटी मोड़, रांची.

छात्रवृत्ति केवल कागजों पर

रांची के कई कॉलेजों में छात्रवृत्ति की घोषणा केवल हवा-हवाई होती दिख रही है. इन कॉलेजों में कई ऐसे छात्र एवं छात्राएं हैं जो आर्थिक रूप से काफी कमजोर हैं, सरकार की यह योजना भी उन्हीं गरीब व असहाय छात्रों के लिए है जो अपनी शिक्षा को पैसों के अभाव में न रोक सके. लेकिन झारखंड के शिक्षा विभाग या फिर इससे जुड़े अन्य विभागीय अधिकारियों को इसकी तनिक भी चिंता नहीं है. आखिर क्या वजह है कि डोरंडा कॉलेज में पिछले चार वर्षों से छात्रवृत्ति नहीं मिली, कुछको मिली भी तो किसी न किसी के पैरवी से. यह जांच का विषय है कोई भी अधिकारी इस बारे में कॉलेज के छात्रों से पूछ कर जानकारी ले सकता है. सबसे दुखद बात यह है कि पिछले दो वर्षों से एसटी कोटा के छात्रों को छात्रवृत्ति नहीं मिली जबकि एससी और ओबीसी के छात्रों को छात्रवृत्ति का भुगतान कर दिया गया है. यह हम जैसे गरीब छात्रों के समझ से बाहर है कि कल्याण विभाग द्वारा जारी किये गये पैसों को कहां खर्च किया जा रहा है. मैं खुद एक मध्यम परिवार से संबद्ध रखती हूं और ट्यूशन पढ़ा कर किसी तरह स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर रही हूं. छात्रों की छात्रवृत्ति समय से न मिल पाने के कारण कई छात्र-छात्रा बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं. अत: हम सभी छात्र-छात्रा की ओर से सरकार से अनुरोध करते हैं कि चार वर्षों से नहीं मिल रही छात्रवृत्ति के कारणों का पता कर जल्द से जल्द छात्रवृत्ति का भुगतान करने की कृपा करें, ताकि गरीब विद्यार्थियों को उनकी पढ़ाई बीच में छोड़ने की नौबत न आये.

मधु गौड़, रांची.

पेसा कानून : पंचायत चुनाव

आज से करीब 14 वर्ष पूर्व 24 दिसंबर 1996 को झारखंड जब बिहार से अलग नहीं था, नया पंचायती अधिनियम जिसे पेसा कानून के रूप में जाना जाता है, पारित हुआ था. उस समय भी संसद में राज्य के करीब 20 सांसद थे, तब किसी ने भी उसके पेंचों को खुलासा करने की ओर आवाज नहीं उठायी थी. इसे गंभीरता से नहीं लेकर मौन रह गये. यही कारण था कि या तो वे इन गंभीर पेंचों को समझ ही नहीं पाये या फिर जान बूझ कर भरी सभा में भीष्म बने रहे. जहां शिड्यूल पांच के तहत आरक्षण के बावजूद मुखिया बनने वाले आरक्षित वर्ग के प्रत्याशी ही नहीं हैं या फिर उनकी संख्या एकदम नगण्य है. वर्ष 2002 में पंचायत चुनाव का बिगुल फूंका गया लेकिन पेसा कानून के तहत विसंगतियों के कारण लंबी अदालती सुनवाई होती रही और आदिवासियों एवं गैरआदिवासियों के बीच बड़ी दरारें पड़ गयी. जबकि गैर आदिवासियों (सदानों) को आदिवासियों या फिर पंचायत से कोई विरोध नहीं है. अगर गैर आदिवासियों का विरोध है तो पेसा कानून को झारखंड में लागू करने के गलत तरीके का. झारखंड अलग राज्य 15 नवंबर 2000 को बना और पंचायत चुनाव अत्यावश्यक भी है क्योंकि पंचायत चुनाव के बाद ही क्षेत्र का समुचित विकास होगा और सुख-समृद्धि होगी. पंचायत चुनाव संपन्न कराने के पूर्व भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 2001 जनगणना के आधार पर राज्य का सर्वे कराकर अनुसूचित क्षेत्रों का पुनर्निर्धारण कराया जाना चाहिए था. जो क्षेत्र पंचायत चुनाव में अनुसूची क्षेत्र के दायरे के बाहर है, उसे अनुसूची क्षेत्र के बाहर करके ही चुनाव करायी जानी चाहिए. ऐसा नहीं करने से गैरआदिवासियों (सदानों) के मौलिक एवं संवैधानिक अधिकारों की रक्षा हेतु अपने व भावी पीढ़ियों के भविष्य को बचाने हेतु एकजुट होकर जाती व धर्म से ऊपर उठ कर मोरचा को तन-मन एवं धन से सहयोग कर मजबूती प्रदान करने की अपील है. संताल-परगना गजेटियर के अनुसार 1790 ई. से लेकर 1810 ई. के बीच या बाद में जो भी झारखंड आये उसे सरकार ने राज्य का आदिवासी बना दिया और जो झारखंड में हजारों वर्षों से वास कर रहे हैं तथा मूलवासी हैं, उसे प्रवासी बना दिया. यह मापदंड झारखंड सरकार की गलत भावना की उपज है.

परमेश्वर झा, दुमका.